गीत-यात्रा

लेखक तारादत्त निर्विरोध

राजस्थान साहित्य अकादमी [संगम]
उदयपुर

प्रकाशक

निदेशक
राजस्थान साहित्य अकादमी [सगम]
उदयपुर

प्रथम सस्करण ११०० प्रतिया
प्रकाशन वप १६७३ ई

मूल्य छ रुपये

मुद्रक

रूपायन प्रस,
गाव बोरुदा ३४२ ६०४

प्रकाशकीय

नई पीढ़ी के प्रतिभावान कृतिकारों की सृजनशील कृतियों को प्रकाश मे लाने की दिशा मे राजस्थान साहित्य अकादमी का प्रकाशन मच अपनी लक्ष्य यात्रा की ओर अग्रसरित है।

प्रस्तुत है — 'गीत यात्रा ।' श्री तारादत्त 'निर्विरोध' की एक ताजा काव्यकृति।

सहजता और सवेदनीयता के धनी कवि श्री तारादत्त की प्रस्तुत काव्य कृति का पाठक समीक्षक स्वागत करेंगे, यह आशा है।

डा देवीलाल पालीवाल

निदेशक

राजस्थान साहित्य अकादमी [सगम], उदयपुर

अनुक्रम

स्वात्म के गीत

टूटती सतहो के गीत

अस्थायी नौकरी के चार स्थायी गीत

एक यात्रा नियुक्ति से [१]
आयोजना के वशज [२]
मूल सशोधन [३]
कुर्सियो से कुर्सियो तक [४]

दूसरो पर छा जाने का गीत
इस ओर
कागजी घोड का गीत
पथरीली सतहा तक
प्रलय के लिए

बिम्ब के उभरने तक

दरपनी अधेरे
पानी का गीत
कई-कई बिंब
पवत की भोर
बिंब के उभरने तक

स्वात्म के गीत

कोई एक नाम

हारी-सी, उकतायी, सवलायी शाम,
मुझसे ही पूछती है मेरा ही नाम,
कोई एक नाम !

अग-जग मे, जीवन मे
जीवन के क्षण-क्षण मे,
फैली-सी धरती की
बालू के कण-कण मे,
मैं ही तो हू,
सागर की लहरा मे
पवत की राहो मे,
झरनो की कल-कल मे
नदियो की बाहो मे,
मैं ही तो हू,
अकित हैं मेरे ही चित्र सब ललाम !
मुझसे क्या पूछती हो, मेरा ही नाम,
कोई एक नाम !!

दरपन के पानी मे
पानी के दरपन मे,
बाहर की दुनिया के
भीतर के दशन मे,
मैं ही तो हू,

मानस के मथन मे
क्षणजीवी—लेखन मे,
धारा मे नवयुग की
और मुक्त-चिन्तन मे,
मैं ही तो हू,
चर्चित हैं रूप और रग हुए आम !
मुझसे क्या पूछती हो, मेरा ही नाम,
कोई एक नाम !!

अनबोले — दर्दों के
रिसते-से घावो मे,
अन-गूजे बोलो के
दद मे, अभावो मे,
मैं ही तो हू,
कविता के दाहरो में
गीता के गावो मे,
छदो मे, भाषा मे
शब्दो म, भावा मे,
मैं ही तो हू,
मेरे ही काव्य के हैं अनगिन आयाम !
मुझसे क्या पूछती हो, मेरा ही नाम,
कोई एक नाम !!

नये शहर का गीत

खोकर अपनेपन का
निश्छल एकाकीपन,
अनजान नगर मे हम
कितने दिन और रहे ?

सब कुछ ही बदला-सा
पहिचान नही कोई,
इन्सानो की बस्ती
इसान नही कोई,
ये गूगी-सी गलिया
ये नामहीन-रस्ते,
ये बेमानी - बातें
ये लोग बडे सस्ते,
डूबें तो किस जल मे
मापें क्या गहरापन,
अनजान नगर मे मन,
कितने दिन और रहे ?

हर क्षण टूटा-टूटा
हर समय एक हलचल,
जीवन से भी ज्यादा
बिखराव और दलदल,
ये लम्बी एक सडक
ये टेढे-मेढे घर,

कुटाए सीख रही
पढना उजले अक्षर ,
परिचय भी दें तो क्या
चाहे क्या अपनापन ?
अनजान नगर मे मन,
कितने दिन और रहे ?

जुड़ना अर्थहीन-सज्ञा से

विश्वास नही होता है —
अधकचरी बातो के बौने-क्षण,
बन पायेंगे सुघर-सलौने-क्षण !
अनघुले और कच्चे रगो के
रूप निखरने से,
काल-भ्रमित पीढ़ी के असमय
कही उभरने से,
विश्वास नही होता है —
मूल्यहीन-युग के अनहोने क्षण,
बन पायेंगे सुघर-सलौने-क्षण !
जुड़ना अर्थहीन-सज्ञा से
गलत प्रतीको से,
इतना व्यर्थ नही था चलना
अधकर लीको से,
विश्वास नही होता है —
नये काव्य में ये ललछौने-क्षण,
बन पायेंगे सुघर-सलौने-क्षण !
खुले व्यग्य के किसी शब्द का
अर्थ बदलने से,
सब कुछ कटा-छटा लगता है
आयु निकलने से,
विश्वास नही होता है —
अपनेपन से अलग अलौने-क्षण,
बन पायेंगे सुघर-सलौने-क्षण !

नये हस्ताक्षरो का गीत

हर क्षण है नया - नया
गतिविधिया नयी - नयी,
युग आगे निकल गया
कुछ साधक पिछड गये !

लेखन की दिशा नयी, जीवन के बोध नये,
सकेतो की भाषा, मानस के शोध नये,

शब्दो को अर्थ मिले
रेखायें उभर गयी,
युग चिन्तन बदल गया
आलोचक पिछड गये !

गीतो म गेय नहीं, रस के अनुबध नही,
अधुनातन गीतो में, कविता के छद नही,

पढने को गीत लिखे
आपूरित भावो से,
स्वर - गायन बदल गये
जन- गायक पिछड गये !

चेतन के कोण नये, चेतनता लोकमयी,
व्यक्तिगत बिम्बो से प्रतिबिंबित विधा नयी,

सज्ञाए सवर गयी
कुछ नये प्रतीको से,
सबोधन बदल गया
अधिनायक पिछड गये !

एक अलग हाशिया

आ रे आ शब्द तुझे
अर्थ दूं नया !
नये - नये काव्य और
अनगिन आयाम ,
क्रियाहीन - वाक्य में
रहे क्यों विराम ?
शब्दों के गाने का
मौसम था
बीत गया !
टूट रहे मचों में
अंतिम - से सांस ,
कितना मैं बांटूँ हम
कोरे विश्वास ?
पढ़ते नहीं, लोग अब
गाते हैं
मर्सिया !
लीक - लीक चलने से
थकते हैं पांव ,
बंधे - बंधे रहने से
जमते अभाव ,
खींचना ही होगा हमें
लिखने के पृष्ठ पर
एक अलग हाशिया !

रोक दिया

देहरी को लाघकर
आगन तक पहुच गया,
परदे ने रोक दिया
जाते हुए कक्ष मे !

खोया-सा खडा रहा, प्रश्न चिन्ह बना हुआ,
दूसरे के ध्यान मे अपना ही वदन छुआ,

घोर अधकार बीच
साधे रहा मौन पर
आखो ने झाक लिया
मन के अतरिक्ष मे !

ठोकर ने प्रश्न किया, पीडा ने नाम लिया,
तुल्सी के पौधे ने बाहो मे थाम लिया,

अनकिए-से काम मे
परिचित-सा मधुर शब्द
अपनो-सी बात को भी
कह गया विपक्ष मे !

जैसे ही पाव बढे, ज्योही पदचाप सुनी,
परदे के बध तोड, पास आयी रोशनी,

दृष्टि मे न आया कुछ
खुली आख बद लगी
वह भी दूर हो गया
आया जो समक्ष मे !

बडे शहर मे

जीना ही होता है
अधेरे-उजाले को,
सोचे हुए कम को करने नही दिया !

वैसे तो अधकार मडराया भ्रार-पार,
कभी तोड पाया क्या दुर्गों-से बद द्वार ?
पीना ही होता है
घूट-घूट गरल हमे,
मगर रिक्त प्याले को भरने नही दिया !

पूछो, कौन करे भी इन्तजार खडा हुम्रा,
इतने बडे शहर मे रहता घाव पडा हुम्रा,
सीना ही होता है
भीतर का घाव हरा,
भ्रधर भ्रौर तृष्णा को ढरने नही दिया !

भ्रथ भ्रात्म चिन्तन का, दिशाहीन-व्याधिया,
खुशियो का भ्रथ है भ्रांसुभ्रो की सधिया,
कथ्यहीन होकर सब
बुनते हैं शब्द-जाल,
भ्रधरो पर गीत मधुर धरने नही दिया !

सपने करक गये

य उजली - सी सतरें
य घुलसनी परतें,
मैं किसके साथ रहू
दोनो विलगाये हैं !

धुधआते शहरो की धूमिल - धूमिल छवियां,
ज्यो सपने करक गये, ज्यो उमस गयी सुधियां,

य देह और ठिठुरन,
ठिठुरने मे भी टूटन,
मैं किसकी व्यथा सहू
दोनो विलगाये हैं !

सपनो के झूले की कितनी कच्ची डोरी,
ज्यो मन की कविता की कोई करले चोरी,

य आतक्ति मुखडे,
ये अनबोले दुखडे,
मैं किसकी व्यथा कहू
दोनो विलगाये हैं !

सर्पों मे रीत गये, विप के सब कोप भरे,
आपस मे डसते हैं, अब मित्र बहुत गहरे,
अलगाव और बिछुन्न,
य दुनियावी - भटकन,
मैं किसका हाथ गहू
दोनो विलगाये हैं !

प्रश्न मौन के

क्षण - क्षण पूछ रहे हैं मुझसे
प्रश्न मौन के,
उत्तर देने वाली छवियां
मुखर क्यों नही ?

बडी भीड है, लोग जमा हैं
गूंगी नही दिशा है,
दिन - दोपहरी मे भी लगता
जसे अभी निशा है,
दिन के धुंधलाये सपने भी पूछ रहे हैं
प्रश्न मौन के,
उत्तर देने वाली सुधियां
मुखर क्यों नही ?

सडकों पर इंसान नही अब
बस - ट्रामों का शोर चल रहा,
दूकानों - बाजारों की हर धूप - छांह
ज्यों
अंधियारे की गांठ छीनकर
धीमे पांवों
उजियाले का चोर चल रहा,
पूछ रहे हैं कुछ तिनके
कुछ कण माटी के
उड आये जो साथ पौन के

बडे शहर की पर गतिविधिया
मुखर क्यो नही ?

दूर, बहुत ही दूर कही से
लौट स्वय के पास आ गया,
खोया-सा दरपनी-बिंब कमरे का
मुझे भा गया,
तभी कुरेदे देते मन को
प्रश्न 'कौन' के,
धूल-घूसरित कल की सदिया
मुखर क्यो नही ?

क्षण पढ़ा न गया

रात पढ़ली गयी
दिन पढ़ा न गया !

दर्द निःसृत हुए लेखनी से सभी
शब्द में कोश में
पा सके न शरण,
उन सभी को किया संकलित किन्तु वे
सूखते ही गये, ज्यों कभी
अश्रु-कण,
बात पढ़ली गयी
तन पढ़ा न गया !

पास परिचित-अपरिचित सभी हैं
मगर
एक परिचय मधुर-मौन ऐकान्त से,
हम रुके हैं कहीं
पथ पर हैं सभी
बोध लेते हुए यौन-संक्रान्त से,
साझ पढ़ली गयी
मन पढ़ा न गया !

फाइलों में किये
आज नत्थी सपन,
दफ्तरों में बुनें
रोज हम रात-दिन,
उम्र पढ़ली गयी
क्षण पढ़ा न गया !

दमखम का गीत

आदमीपन से जुड़े हैं कुछ अबूझे - श्रम,
साथ मे टूटी हुई निब की कलम,
बस, हमारा तो यही दमखम !

हम समय के लोग
जीते हैं अजाने
अनजिये - से
और अनचाहे हुए क्षण,
खोजते हर रात की
अंधी - गली मे
रोशनी के कण,
रूप के, हर रग के, हर दृश्य के
पास रखते दृष्टि के सयम !

भीड मे रहते प्रवासी की तरह
अनभिज्ञ हो
हर शोर से,
दौर से गुजरें मगर
हम अनजुडे हर दौर से,
भावना जितनी प्रबल है
सबल उतना ही अह !

प्रेम करते हैं मगर
चर्चित नही करते

उसे कहते नही,
नाम के, यश के लिए हम
शब्द बन जाते
मगर मन से वहा रहते नही,
शब्द है सकेत अपने
अथ जीवन के नियम !

कर्मचारी का गीत

एक लहर भी वाह न गहती, अनुबंधित हम नहीं कूल से ,
ऐसे पानी मे रहते हैं , जिसकी कोई सतह नही है !

सारे ज्वार और भाटे हैं
परिचित अपनी एक उमर से,
जैसे धूल धूसरित मलयज
होती है हर एक डगर से ,

हम ही नही तैर पाते हैं , चुल्लू भर पानी के भीतर ,
पावो से चलकर हम पहुचे , ऐसी कोई जगह नही है !

महगी बहुत आदमी के घर
रोजी से ऐसे दो रोटी ,
जैसे किसी कर्मचारी के
वेतन से हो कभी कटौती ,

कागज की सत्ता के शासित, गलत किसी टिप्पण के भागी,
दो क्षण सुख की सास ले सकें, ऐसी कोई वजह नही है !

अपनी हर कोशिश कागज की
तह मे मुडकर यो मर जाती ,
बीहड वन मे ज्यो स्वर लहरी
सूनापन दूना कर जाती ,

हर क्षण काली रात यहा पर, शाम, न कोई दोपहरी है ,
सूरज करने लगा नौकरी , तब से घर मे सुबह नही है !

सबधो की बेलें

सूरज की किरणें तो
पहिले से उजली थी,
भीतर के कुहरे का
मलापन छटा नही !

सोते मे साथ रहे कुछ गधाते सपने ,
जब आख खुली पाया, हम रहे नही अपने ,
सबधो की बेलें
दीवारें लाग गयी
आगन के पौधे का
पीलापन मिटा नही,

आखो पर टगे रहे अवचेतन के परदे ,
यह सोच कि कोई फिर आकर चेतन कर दे,
छोटी-सी दृष्टि मगर
पवत तक पहुच गयी ,
दुनिया की आखों से
अपनापन हटा नही !

भावुकपन से ज्यादा भोलापन छला गया ,
लेकिन ऐसा होना अनुभव दे गया नया ,
सौ बार गिरे , सभले
भीडों से बच निकले,
आपस की गुपचुप का
कडुवापन पटा नही !

अभी नहीं

यों जगह - जगह शापित होने से
अच्छा है,
किसी जगह पर थिर हो जाना,
मैंने मन से कहा
मगर उसने कुछ सुनी नहीं!

कटा - कटा-सा रहा स्वयं से
समझौतों ने जोड़ा,
मुझे समय की गूंगी - बहरी
बस्ती में ला छोड़ा,
ऐसे क्षण सज्ञायित होने से
अच्छा है,
नामहीन - बेघर हो जाना,
मैंने मन से कहा
मगर सीमाएं साथ रहीं!

उड़े दृष्टि के रंग, सृष्टि पर
छाये रहे धुंधलके,
बाहों के तकियों पर सोये
शाल नये मखमल के,
यों बार - बार शापित होने से
अच्छा है,
एक मौन, निःस्वर हो जाना,
मैंने मन से कहा
और मन बोला, अभी नहीं!

मन होता है

मन होता है
किसी जलती दोपहरी से जाकर कहू
अकेली क्यो जलती है ?
ला, थोडी आग मुझे दे दे
मैं ठडा होने लगा हू !

फिर कहू, सुन, इस झुलसते रेगिस्तान मे
कोई नही चाहता जलते रहना,
यहा बडी कीमत है एक बूद जल की,
और मैं बाहुपाश मे भरकर
चाहता हू जुडा रहना
आग से एक-एक पल की,
उस आग से
जिसके नही होने पर
पानीदार मैं
स्वात्म खोने लगा हू !

निर्निमेस पलकें टिकाये
फटे-छटे आकाश के चमकीले टुकडो पर
प्यासे अधरो से लोग
मागते हैं पानी
नही चाहन आग के फूल चुनना,
मेरी मगर विवशता

हर बार पचता है मुझे
कोई आग या गीत बुनना,

बुझा हुआ रहना नही चाहता
मेरा अतरग,
हर बार जलन चाहिए मुझे
मैं आजकल
दिन मे भी सोने लगा हू!

कुछ भी नही सुनायी देता
कोलाहल के शहरीपन मे,

यह तुम मुझे कहा ले आये ?
इन जगहा पर उलटे पावो
चलना हाता
सीधे पांव मुडे जाते हैं,
मेरे ही पदचिह्न दूर तक
मुझसे ही बिछुडे जाते हैं,
कुछ भी नही दिखायी देता
आकृतियो के धुधलेपन मे,
यह तुम मुझे कहा ले आये ?

हर अगले क्षण
लाशें ढोती हैं जीवन को
अपना सा कुछ कही न मिलता,
चहुदिस म टग रहे धुधलके
कोनों मे छिप रहे उजाले
किसी दिशा से सूय न उगता
किसी छोर पर चाद न ढलता,
सबकी प्यास जुडी रहती है
अधरो वाले कड़ुवेपन मे,
यह तुम मुझे कहा ले आये ?

जो नहीं बदला

समय की बात है
लोग शब्दो मे आग नही,
आग में शब्द भरने लगे हैं !

सब जैसे तो बदला हुआ है
जो नहीं बदला
सब उसी के रोगी हैं,
और जो है, वह कुछ नही
चौंकाने की वृत्ति है
हम अपने किये के भुक्तभोगी हैं,
क्षणिकाए ही रह गयी हैं
चिंतन के क्षण
एक-एक कर भरने लगे हैं
विचार, असमय के पत्तो-से
झरने लगे हैं !

कृति और कृतिकार के पहिले
परिचय का कोई क्रम है,
उसी क्रम से बद्ध
अशेष - भ्रम है,
एक यात्रा, लेखन से मूल्याकन तक की
पूरी है किसी वक्रोक्ति मे,
कोई मौलिक भेद नही रह गया है

नकारने की वृत्ति श्रौर
स्वीकारोक्ति मे,
कुछेक चेहरे हैं भीड बने
बिसरने लगे हैं,
रग कच्चे हैं, उतरने लगे हैं।

इस बार फिर

इस बार मैंने फिर
उस फूल का मन छुआ
और कहा, तुम्हे खिले ही रहना है!

फूल का गधायित होना ही
कोई बात नहीं
उसका अहर्निश खिले रहना
शाखो के लिए जरूरी है,
रूप का रग विहीन होना भी
कोई बात नही
उसका किसी आकार मे होना
आखों के लिए जरूरी है,

इस बार मैंने फिर
उडते हुए मन से कहा—
तुम्हें मौसम के अनुसार नही,
समय की हवा के साथ बहना है!

उसी समय मगर
आयी एक हलकी बयार
और बदल गया फूल का मन,
वह दूसरी-तीसरी दृष्टियो से बध गया
उसे भीतर की दृष्टि के विस्तार से
बडा लगा, सृष्टि का कानन,

इस बार मैंने फिर
बदल लिया निणय,
और सूने मे अतरग से कहा —
सुनो, तुम्हे फूल का नही,
कटीले शूल का हाथ गहना है!

छोटे-छोटे दर्द

देने को वहुत कुछ
मागो तो कुछ नही,
जितने उदार हम

उतने हैं रिक्त !

वडी वडी बातो मे
छोटे - छोटे दद
कितना अमेल है
औरत है आसमान
धरती है मद ,
कुठाए पाल रहे

ढूढते हैं शक्ति !

पावो से छूट रहे
आयु के गाव ,
मन पर हैं लिख गये
गीत औ' प्रगीत तो
आखा पर भाव
जहा जहा सम्पृक्त ये

वहा-वहा परित्यक्त !

जाने को कइ वप
आने को एक क्षण ,

करते हैं वार-बार
अभाव और पीडा का
संवरण,
जैसे गुलाम थे

वैसे हैं मुक्त ।

शब्दो के पहरे

कुछ भी कहा जाता नही
अधरो की ड्योढी पर
शब्दो के पहरे हैं।

हसने को हसते हैं
जीने को जीते हैं,
साधन-सुभीतो में
रीतो से रीते हैं,

बाहर से हहरे हैं।
भीतर के घाव मगर
गहरे हैं।

भीड भरी सृष्टि मे
ढूढते हैं क्हीं कुछ
न आरोह, न अवरोह,
हमको तो अपने प्रति
किये गये द्रोह से
अधिक रहा मोह,

पाहुन हैं दूर के
गेह-द्वार रूप के
आये हैं, ठहरे हैं।

रहते हैं सभी जगह
किन्तु कभी अपने ही

सृजन का क्षण

ज्योंही छुआ गीत ने कोई मन,
और ऋणी हो गया सृजन का क्षण !

दृष्टि शब्द के गहरे
पैठ गयी
कुछ चित्र उभर आये,
बात पंक्ति के भीतर
बैठ गयी
छंद-छंद मुसकाये,

ज्योंही पहिचाने-अनुमाने ऋण !
और ऋणी हो गया सृजन का क्षण !!

अनजाने परिचित-से
कहीं मिले
उलझे मन निखर गये,
गर्भवती-कुंठा के
द्वार खुले
कुछ निर्णय बिखर गये,

ज्योंही मिले डाल से कोमल तृण !
और ऋणी हो गया सृजन का क्षण !!

दिशाहीन-प्रश्नो के घेरे

यह सुख कौन कम है मेरे लिए
कि दिशाहीन - प्रश्नों के घेरों मे
कहीं नहीं हू मैं !

मुझको नहीं है किसी
कच्चे प्रश्न मे
सहज उत्तर की तलाश,
अपने से अलग होकर
अपने को विज्ञापित करने में
मेरा कतई नही है विश्वास,

इतना सतोष कम नही है
मेरे अकेलेपन के लिए
कि काव्य से सम्पृक्त होकर भी
शब्द पीटने वालो और
शब्द चित्रों के चितेरो मे
कही नही हू मैं !

उजालों के पीछे दौडना
आता नही है मुझे
और मेरी दोस्ती
तिमिरजयी - सवेरो से भी नही,
भीड भरी दृष्टियो से घिरा हुआ
रहता हू मगर
सभी से नही मिलता हू हर कही,

गीतो को पख मिले

गीतो को पख मिले
भावुक मन उड चला खुले आकाश मे,
शब्दो के कमल खिले
कचनवर्णी गध घुली वातास म !

स्वर ने नहलाया कडियो को
फिर लय से जोड दिया,
ताला वे अर्थों के जल मे
हसा को छोड दिया,
हम तुम हो साथ चले
दो क्षण जीने उजलाये विश्वास म !
गीता को पख मिले !!

छन्दो ने किया सयमित, हमको
भाषा ने रग दिया,
भावा ने उर मथा, कसक ने
कहने क ढग दिये,
वे दुर्दिन तभी टले
डूब गये हम कही क्षणिक आभास मे !
गीतो को पख मिले !!

परपरा से मिली चेतना
गति से पथ-पाव मिले,
नये बोध के नये शिल्प से
फिर साचे नये ढले,

अजाने - से रहो

दद को चुपचाप सहलो, सुख मिले तो मत कहो मन,
अब अजाने - से रहो मन !

लोग हैं सबध के अनुबध तक को भूल जाते,
फूल को, हर पाखुरी को, गध तक को भूल जाते,
जो न चर्चित इस चमन में उस हवा का कर गहो मन !
अब अजाने - से रहो मन !!

कागजी सब फैसले टूटी हुई निब से लिखे हैं,
और न्यायाधीश हैं जो कलम मे पहिले बिके हैं,
फाइलो मे दब रहो पर कागजो मे मत चहो मन !
अब अजाने - से रहो मन !!

स्वाथ की इन परिधियो मे कद युग का आदमी,
जो न पशु है, आदमी है, बस यही उसकी कमी,
इस समदर की अबोली धार के सग सग बहो मन !
अब अजाने - से रहो मन !!

ये शब्द किसे दे दू

ये शब्द किसे दे दू
जिसके कुछ अथ नही ?

कुछ शब्द पुराने हैं
सदियों-से क्जल गये,
कुछ शब्द विराने हैं
साचो से निकल गये,
अभिव्यक्त करें मुझको
ये रहे समथ नही ?

कुछ शब्द कोश तक हैं
कुछ पाठ्य - क्रमो तक हैं,
कुछ शब्द आचलिक हैं
कुछ रूढि भ्रमो तक हैं,
ये बात नही इनसे
हो रहा अनथ नही ?

कुछ शब्द अधूरे हैं
बेताल – बेसुरे हैं,
कुछ लय विहीन हैं तो
कुछ गूगे - बहरे हैं,
ये जितने व्यथ हुए
युग उतना व्यथ नही ?

या गल्प-कहानी मे,
जुड़ कर भी सदा रहे
हम अपने पानी मे,

थे साथ मगर ऐसे
ज्यों अपने ही घर मे,

खाली कक्षा वाले
सब परदे उधर गये !

शब्दों के गाने मे
गति है पर ताल नहीं,
गीतो की महफिल मे
कोई कव्वाल नही,

कुछ ऐसे गीत लिखे
सबसे ही अलग दिखे,

जो बिना कही गाये
मानस मे उतर गये !

बातों के टुकड़ों में
या गल्प-कहानी में,
जुड़ कर भी सदा रहे
हम अपने पानी में,

थे साथ मगर ऐसे
ज्यों अपने ही घर मे,

खाली कदा वाले
सब परदे उघर गये !

शब्दों के गाने में
गति है पर ताल नहीं,
गीतों की महफिल मे
कोई कव्वाल नही,

कुछ ऐसे गीत लिखे
सबसे ही अलग दिखे,

जो बिना कही गाये
मानस म उतर गय !

पाता के टुकड़ों में
या गरल-कहानी में,
जुड़ कर भी सदा रहे
हम अपने पानी में,

थे साथ मगर ऐसे
ज्यों अपने ही घर में,

खाली कमरा वाले
सब परदे उघर गये !

शब्दों के गाने में
गति है पर ताल नहीं,
गीतों की महफिल में
कोई कव्वाल नहीं,

कुछ ऐसे गीत लिखे
सबसे ही अलग दिखे,

जो बिना कहीं गाये
मानस में उतर गये !

होने वाली सुबह का गीत

जहरीली हर गस घुली है, जीने की हर सास मे,
काले पखो वाले सपने उडते हैं आकाश मे,
अखबारी - अफवाहो जैसी फैली हुई अधेरी है!
सुबह मे कितनी देरी है ?

उजियाले की गाठ चुराकर भागे तन के चोर हैं,
मटमैली छाया मे रहते नवयुग के सिरमौर हैं,
अभी कागजो की मानवता हर फाइल की चेरी है!
सुबह मे कितनी देरी है ?

सोने की चिडिया रहती कच्चे लोहे के देश म,
दूध दही की नदिया बहती, राजनीति - परिवेश मे,
अभी मानवी - उलझावो की परतें कहा निबेरी है!
सुबह मे कितनी देरी है ?

कब जायेंगे विहग, उडेगे आक्षितिजी किस ओर से,
अभी राशनी बधी हुई है, गनियारा की डोर से,
जीवन से भी अधिक विपमता गहरी और घनेरी है ?
सुबह म कितनी दरी है ?

होने वाली सुबह का गीत

जहरीली हर गैस घुली है, जीने की हर सास मे,
काले पर्तों वाले सपने उडते हैं आकाश मे,
असवारी - अफवाहो जैसी फैली हुई अधेरी है !
सुबह म कितनी देरी है ?

उजियाले की गाठ चुराकर भागे तन क चार हैं,
मटमैली छाया मे रहते नवयुग के सिरमौर हैं,
अभी कागजो की मानवता हर फाइल की चेरी है !
सुबह म कितनी देरी है ?

सोन की चिडिया रहती कच्चे लोहे के देश मे,
दूध दही की नदिया बहती, राजनीति - परिवेश म,
अभी मानवी - उलझावा की परतें कहा निवेरी है !
सुबह मे कितनी देरी है ?

कब जायेंगे विहग, उडेंगे आक्षितिजी किस ओर से,
अभी रोशनी बधी हुई है, गनियारा की डोर से,
जीवन से भी अधिक विषमता गहरी और घनेरी है ?
सुबह म कितनी देरी है ?

गीत - यात्रा

बडे शहर की बडी भीड के कोलाहल से दूर निकल,
फिर गीतो के साथ चल!

कुठा खिसियानी बाला के पिता विरोधाभास हैं,
छोटे भाई बहिन विसंगति क्षोभ और सत्रास हैं,
पहिले बिकी हुई कलमा की मजबूरी की राह बदल!
फिर गीतो के साथ चल!!

सुधिया यहा निपूती, सपने बेवस टूटी पाख के,
युग द्रष्टा हैं काले चश्मे पत्थर वाली आख के,
पहिले बद घरो के द्वारो की खुलवा दे हर साक्ल!
फिर गीता के साथ चल!!

दुघटनाए पढी जा रही सडक-छाप अखबार मे,
कोई लिखता नही मगर सब छप जाता हर बार मे,
पहिले टूटे हुए समय के लोगो की गुन ले हलचल!
फिर गीतो के साथ चल!!

गीत वहा तक ले जायेंगे जहा नीड उजियार के,
क्षण-क्षण जुडते रहते मेले जीवन के, अभिसार के,
जहा प्रकृति के रूप मुखर हैं, कुछ भी नही जहा धूमिल!
इन गीता के साथ चल!!

अधा कुआँ

जो हुआ, अच्छा हुआ
हमने भी देख लिया
रगदा के गाव का
अधा कुआ !

अब तो हैं छूट रहे पावो से
पगडडी - गेह - पाथ,
जा कुछ था, छोड चले
लौट हैं खाली हाथ,

न कही टोकते
पथरीले - शकुन,
न कही रोकती
मटियाली दुआ !

हमने ही चाहे नही
झाडी घर,
छज्जे की धूप के
नये हेरफेर,
अर्से से मौन था
भीतरी - सुआ !

सर्पों के समाज

भीड मे इस तरह् बोलता है
हमारा दिशाहीन - स्वराज ,
जैसे उमडते हुए समदर मे
कम्पर की आवाज

लहरें ही लहरें
जल ही जल
कही नही छोर,
रस्ते हैं
दूर - दूर तक फैली हुई दृष्टि
मगर हर तरफ ज्वार
हर तरफ शोर ,
ऐसे चलते हैं साथ - साथ
अकाज
जैसे पानी के सर्पों के समाज

कधों मे मिले हुए कधे
छिली हुई देह ,
सारी टकराहटा के बीच
अपनी देह भी लगती है विदेह ,
ऐसे हो जाते हैं अपन से अलग
किसी से सम्पृक्त
जैसे कोई पढता हो
कोलाहल के बीच

शुक्रवार की नमाज,
और दुहराते हैं बार-बार
अपना ही नाम
जैसे बुढ़ियाए-लाग
पुरखा का राज

एक व्यग्य-गीत

कुछ भी नही बना तो हमने
बातो के टुकडो म
औरो को दी लाख गालिया !

साजिश थी कोई जो हमने
अपनो की सब चुनी खामिया
पहिचाने - से दोष निकाले,
कसी फब्तिया, व्यग्य फेर कर
बुनते रहे दृष्टि के जाले,
फिर भी, नाटक नही हुआ तो
चौराहे पर नगे होकर
अपनी अर्थहीन - बातो पर
पिटवाते हम रहे तालिया !

इस पीढी से उस पीढी तक
हम ही छाये रहे कि हमने
रोज अलग से घेरे डाले,
और मच पर हूट हुए तो
आम सभा मे पहुच हाथ म
उठा लिया फिर झडे काले,
फिर भी, नेता नही बने तो
अखबारो मे राजनीति की
राजनीति म अखबारो की
उलझाते हम रहे फालिया

अंधी दौड़

कितनी अंधी है यह दौड़ ?
उड़ती हुई धूल की
बाहों मे लिपटी - सी
मटमैली आकृतियां
आयी हैं पिछली
सतहों को छोड़ !
रेत जैसे इनके चिकने और
नहीं तराशे गये चेहरों पर
दिनों तक मली गयी अबीर,
आग जैसे इनके खोखले बदनों से
उतरा हुआ चीर,
सब तरफ मरु - स्थलीय खंड
कहीं नहीं नीर,
और यह लोग पीते हैं
बार - बार
अपनी ही देहों को
निचोड़ - निचोड़ !
कोई नहीं आकृति
कोई नहीं राग,
मलबे के नीचे है दबी हुई
आग ही आग,
रक्तहीन - देहों में
हड्डियों को जीने की
लगी हुई होड़ !

मरुथल के फूल

गंधहीन हैं मगर
कितने नुकीले हैं
मरुथल के फूल !

कई-कई खंडों के
बड़े-बड़े खंड,
चिपकाए रखते हैं
कटे हुए पांवों से
पिछले पाखंड,
कैसे हैं लोग ये
दुहराते बार बार
शहरी परिवेश में
गांवों की भूल !

न कोई राग
न कोई लय,
चेहरों पर लिख गये
अव्यक्त भय,
असमय उड़ती है
क्षितिजों के पार-द्वार
तिनकों को साथ लिए
गदलायी धूल !

गधाते शूल

झरते हैं फूल - पात
डाली से,
गधाते शूल हैं
मौसम की गाली से !

एक नही गध
एक नही राग - रग,
सबके हैं खिलने के
अलग - अलग ढग,
वृक्षो के हाल चाल
पूछें क्यो माली से ?

सूखे - से उपवन मे
मलयज के गीत,
लगते बेमाने - से
अर्थहीन - लय के
शब्दहीन - सगीत,
चलता है कामकाज
अक्षरा के राज म
शब्दो के हल्लो से
अर्थों की ताली से !

सक्रान्त की बारहखडी

लो, मैं स्वय ही कैद हो जाता हू
मौन क ताले जडे कक्ष म,
न अर्थों मे बोलता
न शब्दो की सुनता
और अब क्या माने हैं
ऐसे सवादा क ?

हर रोज पहिले से और
धुधल जाती हैं
सामीप्य की आकृतिया,
अल्पज्ञाता के बीच
मूल्यांकित हो रहे हैं
बौने व्यग्य, लगडे ठहाके
एक आख वाले लतीफे
और मौलिक कृतिया भी
लगती हैं अनुकृतिया,
कसे समव है सब सतहो पर
एक-सा हो लू,
भीतरी परतें खोलू ?
और अब क्या मान हैं
इन मौलिक विवादो के ?

सब रह गये हैं जाशी के ककहरे तक
कोई नहीं पढ़ता सक्रान्त की बारहखडी

गिरवी है युग-मूल्या पर
किसी नामहीन - घड़ीसाज़ के
समय की घड़ी ,
दौड़ रहे हैं भीड़ से महुवापरा तक
असमय के यत्र , प्रणाम ,
उगनिया तक रह गये हैं
अनामों के नाम ,
और अब क्या माने हैं
वजीरों और प्यादों के ?

दृष्टि का रेगिस्तान

उस समय से सृष्टि मे है
हर आदमी अनमोल,
कठिन जब से क्षणो का इतिहास,
सरल जब से सास का भूगोल।

दो विषय विस्तार म
खोया हुआ हर ज्ञान,
ज्या द्वार पर ठहरा उमर का
मानसूनी - क्षण
पाव से लिपटा किसी की
दृष्टि का शुष्क रेगिस्तान,

उस समय से ढरकते हैं
युग के अधर से बोल,
कठिन जब से ऋणा का इतिहास,
सरल जब से प्यास का भूगोल।

पर्वतों के बोझ के
नीचे दवे या प्रान,
धान के होते हुए ज्यो काड से
मिलता नही हो धान,

उस समय से दे रहे हैं
हम मुक्तता का मोल,
कठिन जब से तृणो का इतिहास,
सरल है मधुमास का भूगोल।

कई-कई वार

पहिले भी आये हम
लगता इस सतह तक
और लौट गये हैं
कई - कई वार !

कच्ची सी डोर मे
गूथे थे मालिन ने
फूलो से रात - दिन,
सख्या तो याद नही
रात के बटोही हम
आये थे सुबह तक
लौट हैं फेंक कर
कबूतरो को ज्वार !

यात्री हैं, लौटेंगे
सध्या तक गाव,
अपनी न कोई प्रतीक्षा
न कोई विराव,
नदिया से लौटे हैं
अपनी जगह तक
शीश लिए
पानी की धार !

सदर्भहीन - आदमी

हम वह क्यो नही हुए ?
एक प्रश्न हर बार दुहराता है मन
और रह जाता है मौन
निरूत्तर
दीपकविहीन - आदमी - सा !

सारी कड़ुवाहटो के बीच
जन्मता है एक शब्द - बकवास,
फिर उसी से हो जाते हैं
सम्पृक्त, कई - कई शब्द
कुंठा - विक्षोभ - आक्रोश - विरोधाभास
और अत मे सत्रास,
हम अर्थों मे क्यो नही जिए ?
एक प्रश्न हर बार शोधता रहता है मन
और हर क्षण
हो जाता है प्रकारान्तर
विकल्पहीन आदमी - सा !

चिन्तन मे पैठ जाता है दर्शन
कल्पना और यथार्थ
हो जाते हैं एक रूप,
तीव्रानुभूतियो की यो होती हैं
सहजाभिव्यक्तिया
चित्रांकित रहती हैं चेहरो पर छाह

पृष्ठांकित हो जाती धूप,
आखिर हम लिखते हैं किसके लिए ?
एक प्रश्न डूबता - उतराता है मन
और मन और भावना के बीच
रहता है दिशान्तर
समय से टूटे
दिशाहीन - सदभहीन आदमी - सा !

अस्थायी नौकरी के चार स्थायी गीत

१ एक यात्रा नियुक्ति से

नत्थी होते गये कागज
एक के बाद एक
फाइल मे
और आदमी होता रहा अलग
हर बार अपने से !

एक यात्रा, नियुक्ति से पेंशन तक
पढ गया एक क्षण
कहानी की तरह,
और हो गया निवृत्त
बचपनी - खिलौने तोडकर
दिशाहीन जवानी की तरह,
अकारण जुडती रही कलम
दफ्तरी मसले के
कच्चे सपने से !

टण्डर, खरीद और बिल
सरकती हुई भुगतान की तिथिया,
निरथक क्षणिकाए
अनावश्यक भाग-दौड
गलत दृष्टिया,
सब को मिलता है सुख
दूसरो के कलपने से !

२ आयोजना के वशज

पुत्र है परिपत्र के
सूरत प्रपत्र - सी,
आयोजना के वशज हम
शब्दो के साक्षी
आकडा के योग !
निर्धारित माग से
होकर ही चलते हैं
करते हैं मगर
आशिक अतिक्रमण ।

पहिले पृष्ठाकन
रुपाकन - अनुमोदन
और फिर स्थानातरण,
लिखते अभाव हैं
पढ़ते अभियोग ।

रचते हैं रोज रोज
शब्दो के चक्रव्यूह
मारते न अभिमन्यु को
करते निलम्बित,
मगर प्रकरण
रहते हैं विलम्बित
जो हो जाते हैं अत म
प्रत्यास्थापित,
आदेशा की वस्ती म
आदेशो के लोग ।

३ मूल संशोधन

आ गए दफ्तर, हुआ सब शांत यह
साथ हैं सब ही
मगर फिर आज अपनी जिन्दगी
अवकाश पर है!

कलम में भी निब नयी है
दावात में भी लाल स्याही,
फाइलों में ढेर सारी
पद हो हस्ताक्षर भी
दे सकेंगे कल हमारे
काम करने की गवाही,
हैं सभी तो
एक उजली दृष्टि वाला मन मगर
सन्यास पर है!

प्रूफ संशोधक उमर के
दृष्टि में कैसे करें हम
मूल संशोधन?
काम अपना सब डिलिट है
जुड़ गये हैं साथ अपने
लैस - स्पेस, फिर कॉमे कॉटेशन,
आज सचमुच, नौकरी
युग के किसी क्रास पर है!

४ कुर्सियों से कुर्सियों तक

घर मे घर रहता है
दफ्तर मे दफ्तर भी नही,
कहाँ खोजू अपनी दृष्टि
कौन - सी फाइल मे ?

आदमी कुर्सी - मेज से मिलकर
हो जाता है कागज
और उस पर लिख जाते हैं
अर्थहीन टिप्पण,
मन के खुले आकाश मे
उडने वाला विहगम
पख कट जाने के बाद
जीता है, नही जीने वाले क्षण,
साफ - साफ कैसे देखू
अपनी ही शक्ल
इस काले - जल मे ?

सब किये को
अनकिया कर देता है
आकस्मिक - अवकाश,
उपार्जित अवकाश मे
असमय ही मर जाता है
आदमी के भीतर के आदमी का
आदिम विश्वास,
[कहीं नौकरी से निकाल नहीं दिया जाऊ ?]

सब तरफ है छाया हुआ
कुर्सियो से कुर्सिया तक
एक नीलापन,
कोई फर्क नही है घुटन मे
गरल मे !

दूसरो पर छा जाने का गीत

गलिया से निकला
कि चौराहे - सा बतियाने लगा,
माहौल देखा और मैं गाने लगा,
दूसरो पर छाने लगा!

छापता रहा तमाम दिन
सत्ता - राजनीति और मत्रियों के
गलत - सही समाचार,
सडका - पान की दुकानो
मित्रो और कहवाघरो मे,
बाटता रहा पत्र की प्रतिया
कॉफी के प्याले मे
सिरधरो मे, सिरफिरा मे,
मैं कितना बदल गया
कही कोई कच्चापन देखा
और उसे गीत का अर्थ समझा
अपनी दुकान जमाने लगा!

मगर सब किया व्यर्थ हो गया
जब अर्थ की बात पर
गाडी रुक गयी,
पैसा दिखा और प्रतिमा चुक गयी,
सब फैसले सुनाने लगा
और किसी ने नही सुने तो
सीटिया बजाने लगा!
मैं कितना बदल गया

इस ओर

था, तो बहुत कुछ था कभी
अपनो सा एक एक क्षण,
किसी सम्मोहन से जुड़ा
मन, आत्मविभोर!
और अब पड़ोसी के घर
उगा है राजनीति - सा शोर!

मैं अब भी मौन रहूगा
मुखर के सामयिक - सुख को
चुपचाप सहूगा,
लोग जब शब्द - रचना करेंगे
मैं अर्थ मे बहूगा,
मन कहता है, मत बोल
चुप रहने का है यह दौर!

एकदम उतर गये हैं
शब्दो के रग
अजीब लगता है लिखना
काजल और आखो की कोर,
कोई गाना पसन्द नही करता
बासी रिश्ता के सदभ—
कही खेतो मे उगती होगी भोर
शहरो मे तो दृष्टि के पार तक
कुहरा छाया रहता है हर ओर

सुनो, आम लोगो की समझ
अब हो गयी है किशोर,
इस ओर!

कागजी-घोडे का गीत

तेरे कागजी-घोडे के
कभी पावों के तले
सुरताल ही नही !
सरपट दौडेगा कैसे यह
जिसकी दुनिया में अपनी-सी
कोई चाल ही नही !

काहे पकडे बडे जोर से, टूटी-सी लगाम,
तेरा राम, हरिराम आया जीवन में न काम,
जिनकी तू सवारी करता
उनकी अस्तबलों मे
सभाल ही नही !

गधे दौडते तेज वहा घोडे कैसे दौडें ?
या तो मालिक को ढोए या अपना पथ मोडें,
फाइलो की कच्ची सडकें
आदमी कलम का
तुझे खयाल ही नही !

बिस्कुट मिले घास के बदले, जल के मिस कॉफी,
भूखे बच्चो के पापाजी चबा रहे-टाफी,
कसे भी तू हाकले रे
जानवर को होता पर
मलाल ही नही !

पथरीली सतहों तक

पहिले जो जैसा था
वैसा अब रहा नहीं,
पगडंडी से लेकर पथरीली - सतहों तक !

अंधी - आंखों वाले
सब चमकदार चश्मे,
युग द्रष्टा बन बैठे
कुर्सी के सरकस में,
देखा तो बहुत मगर
मन ने कुछ कहा नहीं,
उन लंगडी बातों से इन गूंगी वजहों तक !

चर्चाए चलती हैं
शहरी आबादी से,
आवाजें दबती हैं
गांवों में खादी से,
सहते ही आये हैं
बोलो, क्या सहा नहीं ?
मटमैली रातों से धुंधलायी सुबहों तक !

संख्या में लिखे हुए
सपने निर्माणों के,
धन्दों में बने हुए

अपने मस्तिष्कों के ,
धारा था एक मगर
हर कोई बहा नहीं,
खाने की मेज से दफ्तर की जगहों तक ।

प्रलय के लिए

भूख के आकड़े गिन सको,
बूद हर प्यास की चुन सको,
तब कहो तुम समय क लिए,
और जीवित प्रलय के लिए,

शब्द बोलो वही आग हो,
आग मे भी कही राग हो,
राग की गूज हर ओर हो,
और स्वर भी न कमजोर हो,
तब कहो तुम प्रतीक्षानिरत
सास के हर विलय के लिए!

खीच दो वह अमिट रेख हो,
रेख म रग का लेख हो,
एक नक्शा उजलने लगे,
साथ हर व्यक्ति चलने लगे,
तब कहो तुम लडे हो यहा
आदमी की विजय के लिए!

लोक का तत्र गलहार हो,
तत्र का एक व्यवहार हो,
आख की किरकिरी दूर हो,
एक कोई न मजबूर हो,
तब कहो तुम जले आग मे
के ह उदय क लिए!

बिम्ब के उभरने तक

दरपनी - अधेरे

उजली - सी रेखो के सावरे चितेरे,
बिब कहा उतरेंगे तेरे ?
सामने हैं दरपनी - अधेरे ।

छाया - सी चल रही
धूलि - कण बुहारती
सडको की भीड,
पावो से छूट रही सतहे
जुडने को आ जुडे
पंछियो के नीड,
जागने को एक रात, सोने को अनगिन सवेरे ।
बिब कहा उतरेंगे तेरे ?

सठियायी - बुद्धि के
मिमियाते - लोग
साथ लिए कटुता की आग,
डसने को आतुर हैं
कुण्डलिया मारे
कुठित - अनुराग,
सर्पों से ज्यादा हैं जहरी सपेरे ।
बिब कहा उतरेंगे तेरे ?

मौसम को बाट रहे
पीढियो के माह,

भटक रहे ठांव-ठांव लम्बी-सी उम्र के
पथहीन ढोह,
सपना जो पलते हैं पुतलियों में मेरे ।
फिर कहाँ उतरेंगे तेरे ?

पानी का गीत

पानी के दपण पर यो ककरी न मारो
किवा का जीवन बिखर जायगा !

पानी के ऊपर भी
बहता है पानी,
पानी के भीतर भी
रहता है पानी,
सागर के पानी को हाथो से तोला तो
लहरों का कचन उतर जायगा !

सभव न पानी मे
पानी को आकना,
लगता ज्यो अपने ही
भीतर म झाकना,
यौवन को दोयो की आखो से देखा तो
परदे का बचपन उघर जायगा !

खारा या मीठा हो
पानी तो पानी,
हो गदलाया, फिर भी
सजल है कहानी,
मोती तलाशोगे, निर्जल की तहो मे तो
दल-दल का दशन उभर जायगा !

कई - कई बिंब

उभरे थे एक साथ
दर्पण मे बिंब कई,
सबको ढक गई
धूलि की परत !

रूप - रंग, रास - रस
गंध - नाम,
सब का एक परिचय है
धनिया के गाव की
चम्पई शाम,
बाहों म सिमटा है
आजकल
जीवन की चाहों में
सब विगत
और अनागत !

लाल हुए सूरज की
हारी थकी देह,
लौटी है दूर से
पानी के गेह,
पढ़ता है सूर्य रोज
यामिनी की पाती में
चांद की लिखत !

पर्वत की भोर

ऊंची पहाडी पर
खेल रहा बाल - रवि
कमसिन - पहाडिन की
गोरी हथेली पर !

किरणो के घेरे मे
गोला एक आग का
उछल रहा,
जैसे गोद ममता की
लेने खिलौने को
कोई शिशु मचल रहा,
उलझे हैं तार तार
प्रेम की पहेली पर !

पछियो के नीडो म
उग आया शोर,
सागर म डूब गई रात
चढ रही है सीढियाँ
पर्वत की भोर,
यौवन का रग चढा
निर्जन के गाव की
गूगी सहेली पर !

बिंब के उभरने तक

सोचता हू ,
हर बार यही सोचता हू
ऐसे जीने से तो ...
और फिर एक पत्थर
अपनी जगह से हिल जाता है
इरादा बदल जाता है

अपनी बात भी लगती है
झूठ, सरासर झूठ,
सोचता हूँ, इस तरह हरे पात सीने से तो
और फिर पीपल से नया पत्ता निकल आता है
कुछ खोया-सा मिल जाता है।
इरादा बदल जाता है।

बिंब के उभरने तक

सोचता हू ,
हर बार यही सोचता हू
ऐसे जीने से तो ..
और फिर एक पत्थर
अपनी जगह से हिल जाता है,
इरादा बदल जाता है !

ये घुमावदार रास्तो का
चितकबरा शहर,
ये और - और तरह के लोग
ये छोटे - छोटे डर,
भूख - प्यास की तरह साथ रहने लगे हैं
हर पहर,
सोचता हू,
इस तरह अपनी जवानी पीने से तो
और फिर कोई धुधलाया - दपण
उजल जाता है,
एक बिंब और
दपण मे खिल जाता है ,
इरादा बदल जाता है !

कभी - कभी अपने रास्ते भी
पावो से जाते हैं छूट,

अपनी बात भी लगती है
झूठ, सरासर झूठ,
सोचता हूँ, इस तरह हर घाव सी न दे तो
और फिर पीनस के नया पता लिख जाता है
कुछ साया-सा घिर जाता है ।

इरादा बदल जाता है ।

तारादत्त 'निर्विरोध' का प्रकाशित साहित्य

काव्य कृतियां

मेरे गीत तुम्हारे ग्रासू
रूप रग-परछाइयां
दर्द का सौदागर
युग-युग के दिनमान
वैयक्तिक सतहो पर हम
ग्राग्रे
योजना के गीत
गांधीजी के उपदेश

कथा

यमद्वितीया

उपन्यास

प्यासा लौट गया पनघट से

सम्पादित

युग बोध [साहित्यिक-सकलन] मुकुट सक्सेना
युग चिन्तन [साहित्यिक सकलन] के साथ
सकेतिका [त्रैमासिक]
याम–१ [एक अनियतकालीन पुस्तक-पत्रिका प्रकाशन]
नीरव के साथ

व्यग्य

मन के चौराहे